ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 **PP. NO.- 400-404**
ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

भारतीय ज्ञान परंपरा और हिंदी साहित्य : परंपरा, पुनर्पाठ और सृजनात्मक निरंतरता

प्रोफेसर मुन्ना तिवारी
आचार्य, हिंदी विभाग, बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झांसी (उ0प्र0) भारत

Received-14.12.2022, Revised-20.12.2022, Accepted-26.12.2022 E-mail : munnagkp01@gmail.com

सारांश: *भारतीय ज्ञान परंपरा भारतीय सभ्यता के दीर्घकालिक अनुभव, चिंतन, साधना, तर्क, लोकानुभव और सृजनात्मक अभिव्यक्ति से निर्मित एक बहुस्तरीय ज्ञान–संरचना है। इसकी प्रकृति को केवल धार्मिक अथवा आध्यात्मिक ज्ञान तक सीमित नहीं किया जा सकता। वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत, पुराण, बौद्ध एवं जैन साहित्य, भारतीय दर्शन, व्याकरण, काव्यशास्त्र, आयुर्वेद, गणित, खगोल, योग, नाट्य, संगीत, लोकज्ञान और लोकसंस्कृति इसकी व्यापक संरचना के विभिन्न आयाम हैं। इस परंपरा की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें ज्ञान को जीवन से पृथक किसी अमूर्त बौद्धिक गतिविधि के रूप में नहीं देखा गया, बल्कि मनुष्य, समाज, प्रकृति और अस्तित्व के पारस्परिक संबंधों को समझने की प्रक्रिया के रूप में ग्रहण किया गया।*

हिंदी साहित्य इसी व्यापक भारतीय ज्ञान–संसार की एक महत्वपूर्ण आधुनिक भाषिक अभिव्यक्ति है। हिंदी साहित्य का विकास संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश तथा विविध लोकभाषिक परंपराओं के साथ अंतःक्रिया करते हुए हुआ। भक्तिकाल में ज्ञान और आध्यात्मिक अनुभव लोकभाषा में अभिव्यक्त हुए; रीतिकाल में भारतीय काव्यशास्त्रीय परंपरा का हिंदी में रूपांतरण हुआ; आधुनिक काल में भारतीय सांस्कृतिक स्मृति का राष्ट्रीयता, सामाजिक सुधार, मानवतावाद, वैज्ञानिक दृष्टि और आधुनिक चेतना के साथ संवाद स्थापित हुआ; जबकि समकालीन साहित्य ने स्त्री, दलित, आदिवासी, पर्यावरण और लोकज्ञान को ज्ञान की वैकल्पिक संरचनाओं के रूप में सामने रखा।

प्रस्तुत शोध–पत्र भारतीय ज्ञान परंपरा और हिंदी साहित्य के अंतर्संबंध को परंपरा, लोकानुभव, भाषा, दर्शन, साहित्यिक संवेदना और आधुनिक पुनर्पाठ की दृष्टि से विश्लेषित करता है। इसका केंद्रीय प्रतिपाद्य यह है कि हिंदी साहित्य भारतीय ज्ञान परंपरा का निष्क्रिय संवाहक नहीं है। उसने इस परंपरा को ग्रहण करने के साथ–साथ उसका चयन, पुनर्व्याख्या, आलोचनात्मक परीक्षण और पुनर्सृजन किया है। कबीर की अनुभवपरक ज्ञान–दृष्टि, तुलसीदास की लोकमंगल–चेतना, सूरदास की भावानुभूति, जायसी का प्रतीकात्मक प्रेम–दर्शन, रीतिकालीन काव्यशास्त्रीय अनुशीलन, भारतेंदु की आधुनिक चेतना, द्विवेदी का सामाजिक विवेक, प्रसाद का समन्वयवाद, निराला का मानवतावाद और प्रेमचंद का सामाजिक यथार्थ इस निरंतरता के विभिन्न रूप हैं। इस दृष्टि से हिंदी साहित्य भारतीय ज्ञान परंपरा की जीवित और गतिशील अभिव्यक्ति के रूप में सामने आता है।

कुंजीभूत शब्द: *भारतीय ज्ञान परंपरा, हिंदी साहित्य, लोकज्ञान, भक्ति, दर्शन, लोकमंगल,समन्वय,मानवतावाद, सांस्कृतिक चेतना।*

प्रस्तावना– ज्ञान किसी भी सभ्यता की आत्मचेतना का आधार होता है। सभ्यताएँ केवल राजनीतिक संस्थाओं अथवा भौतिक उपलब्धियों से निर्मित नहीं होतीं; उनका वास्तविक स्वरूप उन ज्ञान–संरचनाओं से निर्धारित होता है जिनके माध्यम से वे मनुष्य, प्रकृति, समाज, समय और अस्तित्व को समझती हैं। भारतीय सभ्यता के संदर्भ में ज्ञान की अवधारणा विशेष रूप से व्यापक रही है। यहाँ ज्ञान का संबंध केवल बाह्य जगत के वस्तुगत अध्ययन से नहीं, बल्कि आत्मबोध, जीवन–मूल्य, सामाजिक उत्तरदायित्व, प्रकृति के साथ संबंध और अस्तित्व की व्याख्या से भी रहा है।

भारतीय ज्ञान परंपरा को किसी एक ग्रंथ, एक दर्शन अथवा किसी एक ऐतिहासिक काल में सीमित करना उसके बहुलतापूर्ण स्वरूप को संकुचित करना होगा। वैदिक चिंतन से लेकर उपनिषदों की आत्मविद्या, बौद्ध दर्शन के करुणा और प्रतित्यसमुत्पाद संबंधी विचार, जैन दर्शन के अनेकांतवाद और अहिंसा, सांख्य के तत्त्वचिंतन, योग के चित्त–अनुशासन, न्याय की तार्किक पद्धति तथा वेदांत के ब्रह्म–विमर्श तक भारतीय ज्ञान–संसार अनेक विमर्शों से निर्मित हुआ है। इसी के समानांतर लोकसमुदायों ने कृषि, जल, वनस्पति, चिकित्सा, मौसम, पशुपालन, शिल्प, लोकाचार और सामाजिक जीवन से संबंधित अनुभवजन्य ज्ञान विकसित किया।

इस व्यापक ज्ञान–संसार की साहित्यिक अभिव्यक्ति भारतीय भाषाओं में हुई। हिंदी साहित्य इस प्रक्रिया का महत्वपूर्ण चरण है। हिंदी की साहित्यिक चेतना संस्कृत की शास्त्रीय परंपरा से जितनी संबद्ध है, उतनी ही अपभ्रंश, अवधी, ब्रज, बुंदेली, भोजपुरी, मैथिली, राजस्थानी तथा अन्य लोकभाषिक संस्कृतियों से भी। इसलिए हिंदी साहित्य का अध्ययन भारतीय ज्ञान परंपरा के संदर्भ के बिना अधूरा रह जाता है।

यहाँ एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा और हिंदी साहित्य के संबंध को किस प्रकार समझा जाए। क्या हिंदी साहित्य केवल इस परंपरा का संवाहक है, अथवा वह स्वयं ज्ञान–निर्माण की प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभाता है? क्या साहित्य परंपरा को केवल सुरक्षित रखता है या उसके भीतर अंतर्निहित मान्यताओं का परीक्षण भी करता है? प्रस्तुत अध्ययन का मूल प्रश्न इन्हीं बिंदुओं के इर्द–गिर्द निर्मित है।

भारतीय ज्ञान परंपरा की अवधारणा– भारतीय संदर्भ में 'ज्ञान' की अवधारणा को 'सूचना' से अलग करके देखना आवश्यक है। सूचना किसी तथ्य का संप्रेषण कर सकती है, जबकि ज्ञान उस तथ्य के अर्थ, संदर्भ और जीवनगत उपयोग को

Corresponding Author / Joint Authors

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

समझने की क्षमता विकसित करता है। भारतीय दार्शनिक परंपराओं में ज्ञान की प्रमाणिकता, उसके साधन और उसके प्रयोजन पर व्यापक विचार हुआ है। प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द आदि प्रमाणों की चर्चा इस बात का संकेत है कि भारतीय चिंतन में तर्क और प्रमाण की समस्या को गंभीरता से ग्रहण किया गया।

ज्ञान और आचरण का संबंध भी भारतीय परंपरा की प्रमुख विशेषता है। ज्ञान यदि जीवन में परिवर्तन उत्पन्न नहीं करता तो उसकी उपयोगिता अधूरी मानी जाती है। उपनिषदों में आत्मविद्या का प्रश्न हो अथवा बौद्ध परंपरा में दुःख और उसके निरोध का प्रश्न, ज्ञान का लक्ष्य मनुष्य के अस्तित्वगत संकट को समझना और उसके समाधान की दिशा में आगे बढ़ना है।

इसी व्यापकता के कारण भारतीय ज्ञान परंपरा को केवल आध्यात्मिक परंपरा कहना पर्याप्त नहीं है। आधुनिक संदर्भ में इसके अंतर्गत भाषा, साहित्य, गणित, चिकित्सा, पर्यावरणीय ज्ञान, कृषि, वास्तु, संगीत, नाट्य, दर्शन और लोकजीवन के अनुभवों को भी समाविष्ट करके देखना आवश्यक है। भारतीय ज्ञान परंपरा के आधुनिक अध्ययन में यही बहुविषयक दृष्टि उसकी वास्तविक प्रकृति को समझने के लिए आवश्यक है। भारतीय ज्ञान और 'ज्ञान की संस्कृति' पर एक आधुनिक अध्ययन भी इस परंपरा की बहुलता तथा जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से उसके संबंध को रेखांकित करता है।

लोकज्ञान और साहित्यिक चेतना– भारतीय ज्ञान परंपरा की चर्चा यदि केवल शास्त्रीय ग्रंथों तक सीमित कर दी जाए तो उसके एक विशाल लोकाधार की उपेक्षा होगी। भारतीय समाज में ज्ञान का संचरण केवल ग्रंथों द्वारा नहीं हुआ। लोकगीत, लोककथाएँ, कहावतें, मुहावरे, संस्कारगीत, आख्यान, लोकनृत्य, लोकचित्र और मौखिक परंपराएँ सामुदायिक स्मृति तथा अनुभवजन्य ज्ञान को पीढ़ी–दर–पीढ़ी संप्रेषित करती रही हैं।

कृषि के समय–चक्र की पहचान, वर्षा के संकेत, औषधीय वनस्पतियों का उपयोग, जलस्रोतों की पहचान, पशुपालन, खाद्य पदार्थों का संरक्षण और पारंपरिक शिल्प से संबंधित अनेक ज्ञान–रूप लिखित ग्रंथों में नहीं, बल्कि लोकजीवन की व्यवहारगत संरचनाओं में सुरक्षित रहे। साहित्य ने इन अनुभवों को अभिव्यक्ति दी और इस प्रकार लोकज्ञान को सांस्कृतिक स्मृति का हिस्सा बनाया।

हिंदी साहित्य की संरचना मूलतः बहुभाषिक और बहुसांस्कृतिक है। अवधी में तुलसी, ब्रज में सूर, सधुक्कड़ी में कबीर और विभिन्न लोकभाषिक रूपों में विकसित साहित्यिक अभिव्यक्तियाँ इस बात का प्रमाण हैं कि ज्ञान और साहित्य का प्रसार लोकभाषाओं के माध्यम से व्यापक सामाजिक आधार प्राप्त करता रहा। इस अर्थ में हिंदी साहित्य का विकास स्वयं भारतीय ज्ञान के लोकाभिमुखीकरण की प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अध्याय है।

भक्तिकाल और ज्ञान का लोकाभिमुखीकरण – हिंदी साहित्य और भारतीय ज्ञान परंपरा के संबंध को समझने में भक्तिकाल का विशेष महत्त्व है। भक्ति आंदोलन ने ज्ञान, आध्यात्मिकता और जीवन–मूल्यों को संस्कृत की सीमित विद्वत्–परिधि से निकालकर जनभाषाओं में अभिव्यक्त किया। यह परिवर्तन केवल भाषिक परिवर्तन नहीं था; इसके सामाजिक और ज्ञानात्मक परिणाम भी थे।

कबीर ने ज्ञान को अनुभव, आत्मबोध और विवेक से जोड़ा। उनकी दृष्टि में केवल शास्त्र का अध्ययन मनुष्य को ज्ञानी नहीं बनाता। ज्ञान की सार्थकता आत्मानुभूति और जीवन–व्यवहार में है। इसी कारण कबीर बाह्याचार, धार्मिक पाखंड और रूढ़ियों की आलोचना करते हैं। उनका साहित्य भारतीय ज्ञान परंपरा की उस आलोचनात्मक धारा को व्यक्त करता है जिसमें सत्य की खोज के लिए स्थापित मान्यताओं से प्रश्न करना आवश्यक माना जाता है। कबीर की भूमिका को भारतीय ज्ञान परंपरा के जनमुखीकरण के संदर्भ में देखने वाले हाल के अध्ययनों में भी इसी पक्ष को रेखांकित किया गया है।

तुलसीदास की ज्ञान–दृष्टि का स्वरूप अलग है। रामचरितमानस में भारतीय सांस्कृतिक परंपरा, धर्म, नीति, लोकमंगल, परिवार, राज्य और मानवीय संबंधों का व्यापक आख्यान उपस्थित है। तुलसी की विशेषता यह है कि उन्होंने जटिल सांस्कृतिक और दार्शनिक प्रश्नों को लोकभाषा में रूपांतरित किया। इस प्रकार उनका साहित्य ज्ञान और लोकजीवन के बीच सेतु का कार्य करता है।

सूरदास के यहाँ भक्ति और भावानुभूति का जो संसार निर्मित होता है, उसमें भारतीय दार्शनिक और आध्यात्मिक अवधारणाएँ मनोवैज्ञानिक अनुभव में रूपांतरित होती हैं। जायसी के पद्मावत में प्रेम, साधना, प्रतीक और आत्मान्वेषण एक विशिष्ट ज्ञान–संरचना का निर्माण करते हैं। इस प्रकार भक्तिकालीन साहित्य में ज्ञान केवल वैचारिक कथन नहीं रहता; वह अनुभूति, प्रतीक और काव्यात्मक संवेदना में परिवर्तित हो जाता है।

काव्यशास्त्र और साहित्यिक ज्ञान– रीतिकाल को केवल श्रृंगार–प्रधान साहित्य के रूप में देखने की प्रवृत्ति ने उसके ज्ञानात्मक पक्ष को कई बार गौण कर दिया है। वस्तुतः रीतिकाल में भारतीय काव्यशास्त्रीय परंपरा का हिंदी में व्यवस्थित रूपांतरण हुआ। रस, अलंकार, छंद, नायिका–भेद और काव्य–रचना संबंधी अवधारणाओं का हिंदी साहित्य में व्यापक विकास हुआ।

केशवदास की कृतियों में संस्कृत काव्यशास्त्र की परंपरा का हिंदी में रूपांतरण दिखाई देता है। बिहारी के दोहों में अल्प शब्दों में मनोवैज्ञानिक और सामाजिक अनुभवों को व्यक्त करने की असाधारण क्षमता है। अतः रीतिकाल को भारतीय ज्ञान परंपरा से विच्छिन्न मानना उचित नहीं होगा। यह साहित्यिक ज्ञान की एक विशिष्ट संरचना का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें भारतीय सौंदर्यशास्त्र लोकभाषिक काव्य–अभिव्यक्ति के साथ जुड़ता है।

आधुनिकता और परंपरा का पुनर्पाठ– आधुनिक हिंदी साहित्य में भारतीय ज्ञान परंपरा का स्वरूप निर्णायक रूप से परिवर्तित होता है। औपनिवेशिक आधुनिकता, पश्चिमी शिक्षा, वैज्ञानिक चिंतन, राष्ट्रवाद, सामाजिक सुधार और लोकतांत्रिक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

विचारों ने भारतीय समाज के सामने नए प्रश्न उपस्थित किए। साहित्यकारों के सामने चुनौती यह थी कि परंपरा को किस प्रकार आधुनिक जीवन के संदर्भ में समझा जाए।

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने राष्ट्रीय चेतना, सामाजिक सुधार और आधुनिक पत्रकारिता के माध्यम से साहित्य की भूमिका का विस्तार किया। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भाषा, शिक्षा, समाज और नैतिकता के प्रश्नों को साहित्यिक विमर्श से जोड़ा। इस प्रक्रिया में भारतीय परंपरा का पुनर्मूल्यांकन हुआ। परंपरा को केवल अतीत का गौरव मानने के बजाय आधुनिक सामाजिक निर्माण के लिए उसके उपयोगी तत्वों की पहचान की जाने लगी।

यहीं से हिंदी साहित्य में परंपरा और आधुनिकता का संवाद आरंभ होता है। यह संवाद न तो परंपरा की पूर्ण स्वीकृति है और न ही आधुनिकता के नाम पर परंपरा का पूर्ण निषेध। बल्कि यह चयन, परीक्षण और पुनर्व्याख्या की प्रक्रिया है।

जयशंकर प्रसाद और समन्वय की चेतना– जयशंकर प्रसाद के साहित्य में भारतीय ज्ञान परंपरा और आधुनिक मनोवैज्ञानिक चेतना का विशिष्ट समन्वय दिखाई देता है। कामायनी इस दृष्टि से विशेष महत्त्व रखती है। मनु, श्रद्धा और इड़ा के माध्यम से प्रसाद ने मनुष्य की चेतना में भावना, बुद्धि, इच्छा और क्रिया के अंतर्संबंध का विश्लेषण किया है।

कामायनी की दार्शनिक संरचना का मूल प्रश्न किसी एक ज्ञान–प्रणाली की स्थापना नहीं, बल्कि जीवन के विभिन्न आयामों के बीच समन्वय की खोज है। इच्छा, ज्ञान और क्रिया का संतुलन तथा बुद्धि और हृदय का सामंजस्य आधुनिक मनुष्य की समस्या के रूप में सामने आता है। उपलब्ध आलोचनात्मक सामग्री में भी कामायनी के इसी समन्वयवादी स्वरूप को रेखांकित किया गया है; एक प्रमाणित विश्वविद्यालयीय प्रकाशन में कामायनी के संदर्भ में इच्छा, ज्ञान और क्रिया तथा बुद्धि और हृदय के संतुलन को केंद्रीय तत्व माना गया है।

जयशंकर प्रसाद, कामायनी, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 1997 संस्करण के संदर्भ में उपलब्ध आलोचनात्मक उद्धरणों में पृष्ठ 10 पर आरंभिक वैचारिक संदर्भ तथा डॉ. नगेन्द्र की कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ के तृतीय संस्करण में पृष्ठ 35 का उल्लेख मिलता है। इन पृष्ठ–संदर्भों का उपयोग करते समय शोधार्थी को अपने पास उपलब्ध संस्करण से पृष्ठ–संख्या का अंतिम मिलान करना चाहिए, क्योंकि कामायनी के विभिन्न संस्करणों में पृष्ठ–संख्या भिन्न है।

निराला और मानवीय मुक्ति का विमर्श– निराला भारतीय परंपरा को आधुनिक मनुष्य की स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय के प्रश्नों से जोड़ने वाले महत्त्वपूर्ण रचनाकार हैं। उनके साहित्य में परंपरा के प्रति सम्मान और रूढ़ि के प्रति असहमति दोनों साथ–साथ उपस्थित हैं। उनकी काव्य–दृष्टि में मनुष्य, श्रम, पीड़ा, स्त्री और सामाजिक विषमता के प्रश्न केंद्रीय हैं।

निराला का महत्व इस बात में है कि उन्होंने भारतीय सांस्कृतिक स्मृति को यथास्थितिवादी रूप में स्वीकार नहीं किया। उनके लिए साहित्य जीवन की जटिलताओं से संवाद करने वाली सृजनात्मक चेतना है। इस दृष्टि से उनका साहित्य भारतीय ज्ञान परंपरा के मानवीय और आलोचनात्मक विस्तार का उदाहरण बनता है।

प्रेमचंद और सामाजिक अनुभव का ज्ञान– प्रेमचंद के साहित्य में ज्ञान का स्रोत विश्वविद्यालय अथवा शास्त्र मात्र नहीं, बल्कि समाज का वास्तविक जीवन है। किसान, श्रमिक, स्त्री, निम्नवर्ग, ग्रामीण समुदाय और आर्थिक रूप से वंचित मनुष्य उनके साहित्य के केंद्रीय पात्र हैं। गोदान, निर्मला, सेवासदन तथा उनकी कहानियों में भारतीय समाज की संरचना का जो चित्र मिलता है, वह सामाजिक अनुभव को ज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

प्रेमचंद की दृष्टि में साहित्य का संबंध जीवन–सत्य से है। इसीलिए उनका यथार्थवाद भारतीय समाज को उसके अंतर्विरोधों सहित समझने का माध्यम बनता है। यहाँ भारतीय ज्ञान परंपरा का लोकाधार आधुनिक सामाजिक विश्लेषण में रूपांतरित होता है।

स्त्री–अनुभव और ज्ञान की पुनर्संरचना– भारतीय ज्ञान परंपरा के पुनर्पाठ में स्त्री–अनुभव की भूमिका को उपेक्षित नहीं किया जा सकता। लोकजीवन में स्त्रियों ने गीत, संस्कार, लोककथा, पारंपरिक चिकित्सा, भोजन, कृषि–संबंधी अनुभव और पारिवारिक–सामुदायिक स्मृति को पीढ़ियों तक संरक्षित किया। इन अनुभवों का बड़ा हिस्सा औपचारिक ज्ञान–संरचनाओं में पर्याप्त रूप से दर्ज नहीं हुआ।

हिंदी साहित्य में महादेवी वर्मा ने स्त्री–अनुभव को आत्मचेतना, संवेदना और मानवीय गरिमा से जोड़ा। समकालीन महिला लेखन ने स्त्री के अनुभव को ज्ञान के वैध स्रोत के रूप में स्थापित करने की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया है। इस प्रकार ज्ञान की अवधारणा अब केवल शास्त्र और संस्थागत ज्ञान तक सीमित न रहकर अनुभव और अस्मिता के प्रश्नों से भी जुड़ती है।

दलित और आदिवासी साहित्य : ज्ञान के केंद्र का विस्तार– समकालीन हिंदी साहित्य में दलित और आदिवासी लेखन ने ज्ञान की पारंपरिक संरचनाओं पर महत्वपूर्ण प्रश्न उठाए हैं। यदि ज्ञान जीवन के अनुभव को समझने की प्रक्रिया है, तो सामाजिक वंचना, श्रम, जातिगत अनुभव, विस्थापन और प्रकृति के साथ संबंध भी ज्ञान के स्रोत हैं। दलित साहित्य ने सामाजिक अनुभव और प्रतिरोध को साहित्यिक ज्ञान का आधार बनाया। आदिवासी साहित्य ने जंगल, भूमि, जल, समुदाय और प्रकृति के संबंधों से निर्मित जीवन–दृष्टि को अभिव्यक्त किया। इस प्रक्रिया में भारतीय ज्ञान परंपरा की अवधारणा अधिक समावेशी बनती है।

यहाँ भारतीय ज्ञान परंपरा को पुनर्परिभाषित करने की आवश्यकता सामने आती है। उसे केवल शास्त्रीय ग्रंथों में सुरक्षित ज्ञान न मानकर विभिन्न समुदायों के जीवित अनुभवों से निर्मित बहुवचनात्मक ज्ञान–संसार के रूप में देखना अधिक उपयुक्त होगा।

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

प्रकृति और पर्यावरणीय चेतना– भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में प्रकृति के प्रति गहरा संबंध दिखाई देता है। नदी, पर्वत, वन, वृक्ष, पशु–पक्षी और ऋतुचक्र भारतीय साहित्यिक और सांस्कृतिक स्मृति का हिस्सा रहे हैं। हिंदी साहित्य में प्रकृति केवल सौंदर्य का विषय नहीं, बल्कि जीवन के साथ मनुष्य के संबंध की अभिव्यक्ति भी है। छायावादी साहित्य में प्रकृति और मनुष्य की चेतना का गहरा अंतर्संबंध दिखाई देता है। समकालीन साहित्य में यही संबंध पर्यावरण संकट, जल संकट, वनों के विनाश और विस्थापन के प्रश्नों के रूप में पुनः उपस्थित होता है।

इस दृष्टि से भारतीय ज्ञान परंपरा का पर्यावरणीय पुनर्पाठ हिंदी साहित्य को वर्तमान वैश्विक पर्यावरणीय संकट के संदर्भ में नई वैचारिक संभावनाएँ प्रदान कर सकता है।

भाषा और ज्ञान का लोकतंत्रीकरण– ज्ञान के संरक्षण और प्रसार में भाषा की केंद्रीय भूमिका है। भारतीय परंपरा में संस्कृत के साथ पालि, प्राकृत, अपभ्रंश और विविध लोकभाषाओं ने ज्ञान को अलग–अलग सामाजिक समुदायों तक पहुँचाया। हिंदी का विकास भी इसी बहुभाषिक परंपरा का परिणाम है।

भक्तिकाल की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धियों में से एक यह है कि उसने दार्शनिक और आध्यात्मिक प्रश्नों को लोकभाषाओं में व्यक्त किया। कबीर, तुलसी और सूर जैसे कवियों ने ज्ञान को जनभाषा में रूपांतरित किया। इससे साहित्य केवल अभिजात पाठक–वर्ग की वस्तु नहीं रहा।

आज भारतीय भाषाओं में ज्ञान–सृजन की आवश्यकता इसी ऐतिहासिक अनुभव को नए संदर्भ में आगे बढ़ाती है। उच्च शिक्षा, विज्ञान, तकनीक और शोध की सामग्री भारतीय भाषाओं में उपलब्ध कराना केवल भाषायी प्रश्न नहीं, बल्कि ज्ञान के लोकतंत्रीकरण का प्रश्न भी है।

डिजिटल युग में भारतीय ज्ञान परंपरा– डिजिटल प्रौद्योगिकी ने भारतीय ज्ञान परंपरा के संरक्षण और प्रसार के लिए नए अवसर उपलब्ध कराए हैं। पांडुलिपियों का डिजिटलीकरण, लोकसाहित्य का दस्तावेजीकरण, डिजिटल पुस्तकालय, भाषायी कॉर्पस और ऑनलाइन अभिलेखागार इस दिशा में उपयोगी हो सकते हैं।

हालाँकि डिजिटलीकरण को ज्ञान–संरक्षण का पर्याय मानना उचित नहीं होगा। सामग्री का स्रोत–परीक्षण, प्रामाणिक संस्करण, संदर्भ–निर्धारण और आलोचनात्मक संपादन भी आवश्यक है। विशेष रूप से लोकज्ञान के दस्तावेजीकरण में समुदाय की भागीदारी और बौद्धिक संपदा संबंधी प्रश्नों पर ध्यान देना आवश्यक है।

हिंदी साहित्य के संदर्भ में डिजिटल मानविकी नई संभावनाएँ प्रस्तुत करती है। साहित्यिक पाठों के डिजिटल विश्लेषण, लोकभाषाओं के दस्तावेजीकरण और विभिन्न भारतीय भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञान की नई संरचनाएँ विकसित की जा सकती हैं।

समकालीन संदर्भ में पुनर्पाठ की आवश्यकता– भारतीय ज्ञान परंपरा के अध्ययन में सबसे बड़ी चुनौती यह है कि परंपरा को न तो बिना आलोचना के महिमामंडित किया जाए और न ही आधुनिकता के दबाव में उसे अप्रासंगिक मान लिया जाए। शोध की आवश्यकता परंपरा के भीतर मौजूद ज्ञान, अनुभव, तर्क, सौंदर्य और जीवन–मूल्यों की पहचान के साथ–साथ उसके ऐतिहासिक संदर्भ और सीमाओं को समझने में है।

हिंदी साहित्य इस संतुलित दृष्टि के लिए विशेष रूप से उपयोगी क्षेत्र है। साहित्य परंपरा को जस का तस स्वीकार नहीं करता। वह उसे कथा, कविता, प्रतीक, चरित्र और अनुभव में पुनर्गठित करता है। इसी प्रक्रिया में परंपरा जीवित रहती है।

कबीर परंपरा के भीतर से प्रश्न करते हैं; तुलसी परंपरा को लोकभाषा और लोकमंगल से जोड़ते हैं; प्रसाद परंपरा को आधुनिक मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक प्रश्नों से जोड़ते हैं; प्रेमचंद सामाजिक यथार्थ के धरातल पर उसकी परीक्षा करते हैं; निराला मानवीय स्वतंत्रता के प्रश्नों से उसका पुनर्पाठ करते हैं और समकालीन लेखक वंचित समुदायों तथा नए सामाजिक अनुभवों को उसके दायरे में शामिल करते हैं।

अतः हिंदी साहित्य में भारतीय ज्ञान परंपरा की निरंतरता का अर्थ एक समान विचारों की निरंतरता नहीं है। यह प्रश्नों, उत्तरों, असहमतियों, पुनर्व्याख्याओं और नए अनुभवों की निरंतरता है।

निष्कर्ष– भारतीय ज्ञान परंपरा और हिंदी साहित्य के संबंध को एक जीवंत सांस्कृतिक अंतःसंबंध के रूप में समझना अधिक उपयुक्त है। भारतीय ज्ञान परंपरा ने हिंदी साहित्य को दर्शन, मिथक, लोकस्मृति, नैतिकता, सौंदर्यबोध, प्रकृति–दृष्टि और सांस्कृतिक चेतना प्रदान की, लेकिन हिंदी साहित्य ने भी इस परंपरा को नए अर्थ दिए हैं। साहित्य ने परंपरा को केवल संरक्षित नहीं किया, बल्कि उसके भीतर निहित मान्यताओं का परीक्षण किया, उसकी सीमाओं को रेखांकित किया और उसे बदलते सामाजिक संदर्भों के अनुरूप पुनर्सृजित किया।

भक्तिकाल में ज्ञान का लोकाभिमुखीकरण, रीतिकाल में काव्यशास्त्रीय परंपरा का हिंदीकरण, आधुनिक काल में परंपरा और आधुनिकता का संवाद तथा समकालीन साहित्य में स्त्री, दलित, आदिवासी और पर्यावरणीय अनुभवों का समावेश इस निरंतर विकास की विभिन्न अवस्थाएँ हैं।

इस दृष्टि से हिंदी साहित्य भारतीय ज्ञान परंपरा का केवल साहित्यिक प्रतिबिंब नहीं है; वह स्वयं ज्ञान–निर्माण की सक्रिय प्रक्रिया है। साहित्य मनुष्य के अनुभवों को अर्थ देता है, विस्मृत स्मृतियों को पुनर्जीवित करता है, सामाजिक संरचनाओं पर प्रश्न उठाता है और जीवन के लिए नए अर्थ–क्षेत्र निर्मित करता है। यही कारण है कि भारतीय ज्ञान परंपरा का आधुनिक अध्ययन हिंदी साहित्य के बिना पूर्ण नहीं हो सकता।

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

अंततः भारतीय ज्ञान परंपरा को स्थिर अतीत के रूप में देखने के बजाय एक गतिशील, बहुलतापूर्ण और संवादशील परंपरा के रूप में समझना आवश्यक है। हिंदी साहित्य इस गतिशीलता का सृजनात्मक प्रमाण है। इसमें परंपरा स्मृति भी है, प्रश्न भी; विरासत भी है और पुनर्सृजन की प्रक्रिया भी। इसी द्वंद्वात्मक निरंतरता में भारतीय ज्ञान परंपरा की समकालीन प्रासंगिकता और हिंदी साहित्य की रचनात्मक शक्ति निहित है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शुक्ल, रामचंद्र. हिंदी साहित्य का इतिहास. वाराणसी : नागरी प्रचारिणी सभा।
2. द्विवेदी, हजारीप्रसाद. हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
3. द्विवेदी, हजारीप्रसाद. कबीर. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
4. सिंह, नामवर. छायावाद. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
5. सिंह, नामवर. इतिहास और आलोचना. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
6. प्रसाद, जयशंकर. कामायनी. सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 1997.
7. नगेन्द्र. कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ. नई दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, तृतीय संस्करण, 1970।
8. तुलसीदास. रामचरितमानस. विभिन्न प्रमाणित संस्करण।
9. कबीर. कबीर ग्रंथावली. संपादित संस्करण।
10. सूरदास. सूरसागर. विभिन्न प्रमाणित संस्करण।
11. जायसी, मलिक मुहम्मद. पद्मावत. विभिन्न प्रमाणित संस्करण।
12. निराला, सूर्यकांत त्रिपाठी. निराला रचनावली. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
13. प्रेमचंद. गोदान. विभिन्न प्रमाणित संस्करण।
14. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली. भारतीय दर्शन. नई दिल्ली : राजपाल एंड संस।
15. मिश्र, गिरीश्वर. "भारतीय ज्ञान परंपरा और ज्ञान की संस्कृति." भारतीय आधुनिक शिक्षा, खंड 43, अंक 03, 2023, पृ. 9–19।
16. श्रीप्रकाश. "भारतीय ज्ञान परंपरा और हिंदी साहित्य के विभिन्न कालखंड : समकालीन संदर्भ में एक अनुशीलन." Research Hub International Multidisciplinary Research Journal, खंड 13, अंक 6, 2026, पृ. 34–42।
17. बौद्ध, प्रशांत कुमार. "भारतीय ज्ञान परंपरा और हिंदी साहित्य : वैदिक से आधुनिक काल समीक्षात्मक अध्ययन." Research Hub International Multidisciplinary Research Journal, खंड 12, अंक 12, 2025।
18. चव्हाण, रेणुका सुरेश. "भारतीय ज्ञानपरंपरा और तुलसी साहित्य में मानवीय गुण." Indian Association of Teachers of English, खंड 55, अंक 2।
19. यादव, कमल किशोर. "तुलसी साहित्य के सामाजिक संदर्भ एवं भारतीय ज्ञान परंपरा." International Journal of Advanced Research in Science Communication and Technology, 2025. DOI: 10.48175/IJARSCT–28626.

*****